जानकीदेवी बजाज — एक जीवंत प्रतिमा

रोशनी की अपनी परछाई नहीं होती. रोशनी परछाइयां बनाती है. रोशनी परछाइयों को आकार भी देती है. उन्हें उजागर करती है. पहचान के लायक बनाती है.

रोशनी न हो तो सब के रूप एक-से लगें. यह पता ही न चले कि कौन कौन है, कौन क्या है.

रोशनी की अपनी परछाईं नहीं होती, लेकिन जो जितना रोशनी के पास होता है, उसकी परछाईं भी उतनी ही बड़ी होती है. उसका रूपाकार भी उतना ही ज्यादा उजागर होता है.

फिर भी कुछ लोग ऐसे होते हैं जो रोशनी के पास होते हुए भी अपने आप को उजागर नहीं होने देते. उन्हें परछाईं बने रहने में ही सुख मिलता है. ऐसे व्यक्ति रोशनी का ही हिस्सा बन जाते हैं.

जैसे जमनालाल बजाज.

महात्मा गांधी जमनालालजी ही नहीं, पूरे देश के लिए प्रकाश-पुंज थे. जमनालालजी ने गांधीजी का 'पांचवा पुत्र' बनकर अपने आपको उनकी परछाईं बना लिया. उजागर होने की उनकी कोई इच्छा नहीं थी. वे भारत की आजादी की लड़ाई में नींव की ईंट बने रहे.

ऐसी स्थिति में उनकी सहधर्मिणी का धर्म क्या हो सकता था? पति परछाईं, पत्नी परछाईं की परछाईं. हर कदम पर हर क्षण, हर घड़ी साथ रहनेवाली. परछाईं की परछाईं बने रहने का भी अपना सुख हो सकता है. किंतु जब उस परछाईं के मन में कुछ कर गुजरने की महत्वाकांक्षाएं हों, जब वे महत्वाकांक्षाएं स्वयं पति ने ही जगायी हों, जब उसमें अपनी अपार ऊर्जा भी हो, तब वह परछाईं क्या करे? वह कोई अलग दिशा पकड़ ले? यह तो नहीं हो सकता, क्योंकि तब संग छूटने का खतरा है. मात्र परछाईं बने रहना मंजूर नहीं, संग भी किसी हालत में छोड़ना नहीं, तो फिर क्या रास्ता है?

रास्ता एक ही हो सकता है. परछाईं अपना धर्म भी निभाये और उस धर्म के दायरे में रहते हुए उससे आगे भी निकल जाये.

जानकीदेवी बजाज ने यही किया.

जानकीदेवी हर तरह से एक सामान्य भारतीय नारी थीं, लेकिन उनके जीवन और चरित्र में ऐसा भी बहुत - कुछ था, जो उन्हें सामान्य भारतीय नारी के खांचे से अलग कर देता था. वे चाहतीं तो अपने पति जमनालाल बजाज के रास्ते पर उनके साथ-साथ, उनके पीछे-पीछे चलते हुए भी सामान्य से असामान्य हो जातीं, क्योंकि जमनालालजी की पूरी जीवन-यात्रा कर्ममय थी. जानकीदेवी ने ऐसा किया भी. फिर भी उनकी जीवन-यात्रा का अपना एक लक्ष्य भी था. उस लक्ष्य तक पहुंचने के लिए वे जमनालालजी ही नहीं, अपने आसपास के हर व्यक्ति के काम में कुछ-न-कुछ नया, कुछ-न-कुछ क्रांतिकारी जोड़ती

गयीं. इससे उनकी अपनी पहचान बनी. अपना व्यक्तित्व बना. वे महज परछाईं नहीं रह गयीं. क्रांतिकारी नारी की जीवंत प्रतिमा बन गयीं.

जानकीदेवी का जन्म 7 जनवरी 1893 को जावरा के एक धनाढ्य व्यवसायी परिवार में हुआ. धार्मिक नियमों का पालन और कुटुंबियों एवं अन्य लोगों की मदद करने की भावनाएं उन्हें संस्कार में मिलीं. सिलाई-बुनाई-कढ़ाई, पाक-कला आदि उन्हें उसी तरह सिखायी गयीं थी जैसे मध्यवर्गीय परिवारों में सिखायी जाती है – बल्कि उस जमाने में तो लड़की को यही सब सिखाया जाता था, क्योंकि उसे 'नया और अपना' घर संभालना और संवारना होता था. पढ़ाई के नाम पर जानकीदेवी को केवल अक्षरज्ञान ही प्राप्त हुआ था. आभूषण-प्रेम, शुद्धता-शुचिता का पूरा खयाल, छुआछूत आदि का विचार उनके मायके के संस्कारों की देन थे. ऐसे में 9-10 साल की गुड़ियों से खेलनेवाली, अबोध अवस्था में ही जमनालालजी से उनका विवाह हो गया और वे वर्धा आ गयीं. अगले कुछ ही वर्षों में उन्होंने अपने पति को गांधीजी के क्रांतिकारी विचारों का अनुसरण करते पाया. यह स्थिति किसी भी सामान्य 'बहू' के लिए घोर परेशानी का बायस बन सकती थी. जानकीदेवी के लिए भी बनीं. लेकिन उन्हें इस परेशानी से उबरते देर नहीं लगी.

उनके चरित्र की आंतरिक शक्ति उनके बहुत काम आयी. इसी आंतरिक शक्ति ने जानकीदेवी को वह प्रेरणा भी दी जिसके बल पर वे जमनालालजी के विचारों और सिद्धांतों का पालन करते हुए भी अनेक मामलों में उनसे आगे निकल गयीं. यह उपलब्धि कितनी कठिन रही होगी, इसका अनुमान इसी बात से लग सकता है कि जमनालालजी सांसारिक व्यक्ति होते हुए भी सांसारिक मोहजाल से मुक्त थे. जो व्यक्ति केवल 17 वर्ष की उम्र में अपना घर-परिवार, व्यापार, धन-संपत्ति, सुख-सुविधाएं-वैभव छोड़ कर जा सकता है और साधू बनने का विचार कर सकता है (ऐसा होने नहीं दिया गया, यह अलग बात है), जो व्यक्ति अपनी सारी कमाई देश के लिए दान कर सकता है, जो व्यक्ति गांधीजी जैसे कठोर अनुशासन वाले व्यक्ति के प्रति अपने आपको पूर्णतया समर्पित कर सकता है, और केवल दूसरों के लिए ही जीना चाहता है – ऐसे व्यक्ति की पत्नी बनकर जीना, उसके घर-परिवार को ही नहीं, उसके सामाजिक और रचनात्मक कार्यों को भी संभाले रखना कोई आसान काम नहीं हो सकता. जानकीदेवी तो जैसे हर रोज़ एक अग्निपरीक्षा से गुजरती रहीं – और हर परीक्षा के बाद वे कुंदन की तरह तप कर और भी अधिक तेजोमय हो कर प्रकट हुईं.

उनकी ये अग्नि परीक्षाएं बहुत छोटी उम्र में ही शुरू हो गयीं थीं. जमनालालजी पुरुष और नारी की समानता के घोर पक्षधर थे – बल्कि वे नारी को पुरुष से भी ऊंचा दर्जा देते थे, जबकि जानकीदेवी को संस्कार में यह बात मिली थी कि पति परमेश्वर होता है.

वह पूजनीय है. इसलिए न ये पति के भोजन करने से पहले भोजन करती थीं, न पति के चरणों का धोवन (पादोतक) लेने से पहले मुंह जूठा करती थीं. यहां तक कि वे भोजन भी पति की जूठी थाली में ही लेती थीं. जमनालालजी को यह सब पसंद नहीं था. उन्होंने जूठी थाली में खाने से मना किया. जानकीदेवी मान गयीं. मगर पादोतक के मामले में वे अड़ी रहीं. उनका कहना था, इसके पीछे उनकी धार्मिकता नहीं, भावनात्मक आस्था छिपी हुई है.

तेरह-चौदह साल की उम्र में ही जानकीदेवी के सामने परीक्षा की एक और घड़ी आयी. जमनालालजी सोने के आभूषण पहनने के खिलाफ थे. गांधीजी ने भी कहा था कि गहनों का त्याग किया जाये. जमनालालजी ने जानकीदेवी को एक पत्र लिखा कि वे गहने पहनना छोड़ दें. जानकीदेवी ने इस घटना को बड़े मार्मिक शब्दों में अपनी आत्मकथा में यों लिखा थाः

''यह बात वह रूबरू कहते तो शायद मैं उनसे बहस भी कर बैठती. पर उनकी चिट्ठी भी मेरे लिए वेद-वाक्य जैसी थी. चिट्ठी का एक-एक शब्द मेरे लिए आदेश था. चिट्ठी मेरे सामने थी और मैं एक-एक गहना उतार कर रखती जा रही थी... मुझसे कहा गया थाः 'सोना कलि का रूप है. दूसरों में ईर्ष्या पैदा करता है, खो जाने का और चोरी का डर रहता है. शरीर पर मैल जम जाता है. नाक-कान में दुर्गंध आने लगती है...''

सारे गहने उतर गये. बस एक चीज बची रह गयी – पैर की चांदी की कड़ी. मारवाड़ी समाज में सभी स्त्रियों को पैर की चांदी की कड़ी तो पहननी ही पड़ती थी. गरीब से गरीब के पैर में यह कड़ी रहती थी. लेकिन जानकीदेवी ने उस कड़ी को भी उतार डाला.

यह बात उनकी समझ में आ गयी थी कि पैर में पड़ी वह चांदी की कड़ी, वास्तव में, सामंतवादी युग की दी हुई, नारी के पांव में पड़ी गुलामी की जंजीर थी.

गुलामी को खत्म करने के लिए उसके प्रतीकों को पहले खत्म करना निहायत जरूरी होता है. नारी की गुलामी का ही एक अन्य प्रतीक थी परदा-प्रथा-यानी घूंघट. राजस्थान में तो घूंघट 'प्रतिष्ठा, सभ्यता और कुलीनता का चिन्ह' ही माना जाने लगा था. जमनालालजी ने जानकीदेवी को इस मध्ययुगीन परतंत्रता-प्रतीक को भी हटा देने को कहा. जानकीदेवी ने अपने घूंघट को ही तिलांजलि नहीं दी, परिवार की अन्य महिलाओं से भी घूंघट छुड़वा दिया. वे खुद लिखती हैंः 'मेरा घूंघट छूट गया तो मुझे दूसरी बहनों का घूंघट खुलवाने की धुन लग गई. कई बहनों को मैं सभाओं में मंच पर घूंघट खुलवा कर खींच लायी. जहां-जहां मैं गई, यही मेरा काम हो गया... मैं मानती हूं कि परदा छोड़ना साहस की बात है, इससे दिल तथा दिमाग खुल जाता है. काम करने की हिम्मत बढ़ती है.'

इस संदर्भ में एक बार गांधीजी ने जानकीदेवी को जो पत्र लिखा, वह बड़ा महत्वपूर्ण है. 25 अक्तूबर 1933 को लिखे गये इस पत्र में गांधीजी ने कहा था : 'आप बहनों से परदा

छुड़वाने के लिए कलकत्ता जा रही हैं, इसके लिए धन्यवाद. परदा वहम नहीं है, उसमें मुझे पाप की बू आती है. परदा किससे रखें? क्या पुरुष-मात्र विषयासक्त रहते हैं? क्या स्त्री अपनी पवित्रता बगैर परदा नहीं रख सकती है? पवित्रता मानसिक बात है...'

जानकीदेवी जो भी कदम उठा रही थीं, उन्हें पति की आज्ञा का पालन मात्र नहीं माना जा सकता. ये उनके क्रांतिकारी होते जाने की प्रक्रिया के ही लक्षण थे. यह बात कैसे भूली जा सकती है कि कोई भी क्रांतिकारी व्यक्ति आदर्शवादी भी होता है, मिशनरी भी!

यह क्रांतिकारी आदर्शवादिता और मिशनरी उत्साह खादी और स्वदेशी आंदोलनों में अपने उत्कर्ष पर नजर आया. गांधीजी ने कहा था कि खादी ही भारतीय ग्राम्य जीवन के स्वावलंबन का आधार हो सकती है. विदेशी वस्त्र भी विदेशी गुलामी का प्रतीक हैं. जमनालालजी खुद खादी पहनते थे, चरखा चलाते थे, सूत कातते थे. विभिन्न सत्याग्रहों के दौरान उन्हें जेल जाना पड़ता था, तब भी चरखा उनके साथ रहता था और कितना सूत काता, इसका वे पूरा हिसाब-किताब भी रखते थे. जानकीदेवी ने भी खादी के मंत्र को इस कदर आत्मसात् कर लिया कि घर में सब कुछ खादीमय हो गया. जानकीदेवी खुद तो चरखा चलाती ही थीं, उन्होंने सूत कातना सिखाने के लिए अन्य महिलाओं की कक्षाएं चलाना भी शुरू कर दिया. इसके लिए उन्होंने घर में 60 चरखे रख लिये. वर्धा की बजाजवाड़ी खादी आंदोलन का केंद्र बन गयी. जानकीदेवी की देख-रेख में वर्धा के घर-घर में चरखे चलने लगे.

यह अपने घर से निकल कर समाज के बीच काम करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम था. फिर जब कांग्रेस के सभासद बनाने की बात आयी, तब तो जानकीदेवी जी-जान से उसमें जुट गयीं. यह काम आसान नहीं था. ऐसे लोगों की कोई कमी नहीं थी जो 'स्वराज्य', 'अंग्रेज' और 'कांग्रेस' जैसे नामों तक से बिदकते थे. जानकीदेवी ने घर-घर जा कर सदस्य बनाना शुरू कर दिया. वे लिखती हैं, 'मेरे इस काम से बहनों को जरा घबराहट हुई. जो मुझे पहले आदरपूर्वक बुलाती थीं और जो जान-पहचानवाली थीं, वे भी अब बिदकने लगीं. दरवाजे बंद कर लेतीं और कहलवा देतीं कि घर पर नहीं हैं.' ऐसे में सबसे अधिक सदस्य हरिजन मोहल्लों में ही बने. इससे छुआछूत का संस्कार भी टूटने लगा. बजाज परिवार का निजी लक्ष्मीनारायण मंदिर भी हरिजनों के लिए खोल दिया गया. घर में एक हरिजन को सेवक के रूप में रख लिया गया. जमनालालजी को भोजन परोसने का काम यही सेवक करता था.

जानकीदेवी की दृष्टि का विस्तार हो रहा था. दुनिया और जिंदगी को देखनेवाली उनकी नजर में परिवर्तन हो रहा था. सामाजिक कुरीतियां उन्हें नजर आने लगी थीं, इसलिए उनका नजरिया भी बदलता जा रहा था.

यह नजरिया बदलने में शिक्षा का भी बहुत बड़ा हाथ था. जमनालालजी नारी-शिक्षा के घोर पक्षघर थे, क्योंकि उन्हें नारी-शिक्षा में ही नारी-उत्थान का मार्ग नज़र आता था. जानकीदेवी ने भी पढ़ाई-लिखाई शुरू कर दी थी. परीक्षाओं में वे बैठीं. बार-बार बैठीं. उत्तीर्ण होना-न होना उतना महत्वपूर्ण नहीं था, जितना पढ़ना और परीक्षाओं में बैठना. और फिर वे इस स्थिति में भी आ गयीं कि वे दूसरों को पढ़ा सकें. जमनालालजी द्वारा स्थापित किये गये महिला आश्रम और महिला विद्यालयों से भी वे सक्रिय रूप से जुड़ गयीं.

फिर जब देश में स्वदेशी आंदोलन ने जोर पकड़ा तो एक दिन जमनालालजी ने जानकीदेवी से कहा, 'गांधीजी का कहना है कि विलायती कपड़ा राक्षस के रूप में अपने देश में पड़ा है. इस पाप को हिंदुस्तान से निकालना है. अपने घर में एक भी कपड़ा न रहे.'

'यह काम कैसे होगा? जानकीदेवी बोलीं. 'घर में, दुकान में, मंदिर में सब जगह विलायती कपड़े हैं. सबकी सफाई कैसे की जायेगी? क्यों न ऐसे लोगों में बांट दें जो गरीब हैं!'

'इस तरह तो हम अपना पाप दूसरों को पहना देंगे. इससे आंदोलन में कमजोरी ही नहीं आयेगी, बहिष्कार का मूल उद्देश्य ही समाप्त हो जायेगा. पाप तो जलाने की चीज़ है. उसे कैसे बांटा जा सकता है? विदेशी कपड़ों की तो होली ही जलेगी.'

जानकीदेवी बात को समझ गयीं. उन्होंने घर ही नहीं, दुकान और मंदिर तक के विदेशी वस्त्र निकाल फेंके. शगुन तक के विदेशी वस्त्र होम कर दिये. वर्धा के मुख्य चौक पर यह होली सात दिनों तक जलती रही.

नारी-उत्थान, हरिजनोद्वार, नारी-शिक्षा, खादी का प्रचार-प्रसार, सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध सक्रिय अभियान-जानकीदेवी हर क्षेत्र में बड़े उत्साह से काम कर रही थीं. अब उन्हें जमनालालजी के 'आदेश' की भी कोई जरूरत नहीं थी. इन रचनात्मक कार्यों के लिए वे जमनालालजी की ही तरह देश के विभिन्न हिस्सों की यात्राएं भी कर रही थीं और हर काम में अपनी कोई-न-कोई नयी बात भी जोड़ती जा रही थीं.

फिर आया 1930 का साल और गांधीजी द्वारा छेड़ा गया अपने समय का सर्वाधिक महत्वपूर्ण आंदोलन – यानी नमक आंदोलन. जमनालालजी ने जानकीदेवी से कहा, 'इस काम में मेरी तो सर्वस्व होने की तैयारी है, अपनी तू देख.' इस पर जानकीदेवी का जवाब जमनालालजी को भी चौंका देने वाला था. वे बोलीं, 'बापूजी की टुकड़ी में अपने कुटुंब का एक आदमी तो होना ही चाहिए. इस महायज्ञ में इस घर की आहुति जरूर पड़नी चाहिए.' और इस काम के लिए उन्होंने अपने बेटे कमलनयन को चुना, जो उस समय 18 वर्ष के भी नहीं थे.

नमक आंदोलन में भाग लेने वाली गांधीजी की सत्याग्रही टुकड़ी में कोई भी व्यक्ति

18 वर्ष से कम का नहीं था. गांधीजी कमलनयन को अपने साथ ले जाने को तैयार नहीं थे, लेकिन जानकीदेवी की जिद के सामने उन्हें भी झुक जाना पड़ा.

गांधीजी के कहने पर जानकीदेवी जमनालालजी के साथ बंबई में सत्याग्रहियों को तैयार करने के लिए वहां की विलेपार्ले छावनी में चली गयीं.

बंबई में उनका काम कुछ अजीब किस्म का था. शराब की दुकानों के आगे पिकेटिंग, शराब पीने वालों को शराब छोड़ने के लिए समझाना- और आंदोलन के लिए सत्याग्रही भी तैयार करना.

और फिर जानकीदेवी को भी सत्याग्रही के रूप में गिरफ्तार कर लिया गया. उन्हें जेल हो गयी.

एक सामान्य-साधारण लड़की, जो किसी समय अपने घर आंगन के अलावा किसी भी चीज की समझ नहीं रखती थी, अब देश के उस क्षितिज तक पहुंच गयी थी, जहां कोई राष्ट्रीय स्तर का क्रांतिकारी ही पहुंच सकता है.

बापू के 'ग्राम-स्वराज्य' की आर्थिक नीति के अनुरूप जानकीदेवी ने काफी कुछ योगदान दिया. चाहे वह गो-सेवा के जरिए पशुधन की रक्षा हो, अथवा स्वदेशी के द्वारा ग्रामोद्योग का विकास हो. जानकीदेवी का विश्वास था कि ग्रामीण उद्यमशीलता के द्वारा ही ग्रामविकास संभव है.

जानकीदेवी की जिम्मेदारियां अपार थी -घर-परिवार की देखभाल, बच्चों का पालन-पोषण, बेटे-बेटियों के विवाह, रिश्तेदारों की आवभगत, ऊपर से वर्धा में हर समय बीसियों राजनेताओं का आते-जाते रहना, उनकी सुख-सुविधाओं का खयाल, गांधीजी और जमनालालजी द्वारा चलाये जा रहे रचनात्मक कार्यों में योगदान, जमनालालजी द्वारा खोली गयी गोशाला की देखभाल, और फिर राजनीतिक कार्य. इतना ही नहीं, यह ललक भी कि जो कुछ हो रहा है, उसमें उन्हें अपनी तरफ से भी कुछ जोड़ना है.

ऐसे में 50 से भी कम उम्र में पति का संग हमेशा के लिए छूट जाना किसी वज्रपात से कम नहीं था. 11 फरवरी 1942 के दिन अचानक यह त्रासदी हुई. जानकीदेवी सन्न रह गयीं. उनकी पहली प्रतिक्रिया यह थी कि उन्हें अपने पति के पार्थिव शरीर के साथ सती हो जाना है, लेकिन गांधीजी ने उन्हें मानसिक सहारा दिया. वे जानकीदेवी से बोले – 'शरीर को जलाने से क्या फायदा! वह तो तुच्छ है. मिट्टी है. अपने सब दुर्गुणों को जला देना ही सतीत्व है. अपने सब दुर्गुणों को चिता में होम करो. फिर जो बाकी बचेगा, वह शुद्ध कंचन रहेगा. उसको कैसे जलाया जाये? उसे तो कृष्णार्पण ही किया जा सकता है. स्त्रियों को मैं त्यागमूर्ति मानता हूं, क्योंकि हिंदू स्त्री विधवा होने पर सारे भोगों को तिलांजलि देती है,

विकारों का शमन करती है. अब तुम त्यागमूर्ति बन गयीं. अपने अवगुणों को जमनालाल की चिता में जला दो. अपना जो कुछ हो, वह उसके काम में लगा दो. यही सती होना है. उठो, तुम सती हो जाओ.'

'आजसे मैं और मेरा सब कुछ कृष्णार्पण है,' जानकीदेवी ने कहा.

जमनालालजी को अपने अंतिम समय में गो-सेवा की लगन लग गयी थी. उन्होंने एक गो-सेवा संघ भी बनाया था. बापू के कहने पर जानकीदेवी ने गो-सेवा का व्रत लिया और इस संघ की अध्यक्षता का भार संभाल लिया. विनोबाजी तथा घनश्यामदास बिड़ला इसके उपाध्यक्ष बने. गो-सेवा संघ का काम नये सिरे से शुरू किया गया. एक गो-रस भंडार तो पहले से ही चल रहा था. उसमें गायों का मनों दूध आता और बिकता था. व्यक्तिगत रूप से ग्वाले भी गायें पालने लगे थे. बापू के कहने पर जानकीदेवी इस कार्य को देशव्यापी स्तर पर फैलाने में जुट गयीं. उनके प्रयासों से बिहार, उत्तर प्रदेश, पंजाब, राजस्थान, बंगाल और बंबई आदि में गो-सेवा संघ का काम चलने लगा.

30 जनवरी 1948 के दिन जब बापू का बलिदान हुआ तो जानकीदेवी सहित समस्त बजाज परिवार देश की ही तरह दुख की काली नदी में डूब गया. बजाज परिवार को तो यही लगा जैसे उसने पिता को एक बार फिर खो दिया हो. अब जानकीदेवी के लिए एक ही सहारा था. यह सहारा थे विनोबा.

विनोबाजी ने भूदान-यज्ञ चलाया, तो जानकीदेवी उस यज्ञ की सफलता के लिए उनके साथ हो गयीं. विनोबा को लाखों एकड़ भूमि दान में मिली. लेकिन जानकीदेवी की अपनी मौलिक सूझ यहां भी शांत नहीं रही. उन्हें लगा, भूमि तो मिली, मगर सिंचाई के लिए पानी कहां से आयेगा? कुओं के बगैर भूमि किस काम की! यही सोच कर उन्होंने भूदान के साथ कूपदान को भी जोड़ दिया.

एक अधूरा यज्ञ अब पूर्ण हो गया.

जानकी देवी जब जावरा से वर्धा अपनी ससुराल आयी थीं, तब वे मात्र नौ वर्ष की थीं. अल्हड़ बालिका दुनिया से अनजान अपने पति की छाया की तरह खामोश, न कुछ करनेवाली, न कुछ मांगनेवाली. लेकिन समय बीतने के साथ वह परछाईं काया बनती गयी. खुद जीवंत हो उठी. इतनी जीवंत कि रोशनी के चले जाने के बाद भी मिटी नहीं. खुद एक प्रज्वलित दीप-शिखा बन गयी.

परछाईं से अलोकित दीप-शिखा बनी इस हस्ती की अपनी भी अनेक खूबियां थीं. अपनी भाषा में 'न' और 'नहीं' को कभी न लाने वाली जानकीदेवी का मन कितना कोमल था और संवेदना कितनी प्रबल, इसका पता इसी बात से चल जाता है कि वे दीवार में कील ठोंकने के सख्त खिलाफ थीं. वह कील उन्हें अपने कलेजे में घुंपती महसूस होती

थी. किसी गाड़ीवान को गाड़ी में जुते मूक पशुओं को गोड़ते देख उनका खून खौल उठता था. कई बार तो वे गाड़ीवानों से झगड़ भी पड़ती थीं.

जानकीदेवी ने अपनी इस संवेदना के साथ-साथ अपनी बाल सुलभ चंचलता और निर्दोष साफगोई को भी ताजिंदगी बनाये रखा. एक घटना को विनोबा ने यों लिखा है:

'बिहार की भूदान-यात्रा खत्म करके हम बंगाल में प्रवेश कर रहे थे, उस दिन जानकीदेवी हमारे साथ थी. भीड़ बहुत थी, जिनमें लड़कों की भी बड़ी तादाद थी. भीड़ में से मार्ग निकालने के लिए मैंने लड़कों का हाथ पकड़ कर दौड़ना शुरू किया. बुजुर्ग लोग पीछे रह गये. लड़कों के साथ हम दौड़ते हुए आगे चले गये. मुझे खयाल न रहा कि 62 साल की एक बालिका भी लड़कों के साथ दौड़ती आ रही है. दौड़ते-दौड़ते वह गिर पड़ीं. उनके घुटने में चोट आयी. दर्द शुरू हुआ, जो कम-बेसी आज तक जारी है. अब वह दौड़ तो क्या सकेंगी, पर ज्यादा चल भी नहीं सकतीं. पर उनका मन दौड़ता ही रहता है... जानकीदेवी की यह बालवृत्ति अंत तक कायम रहे और हम सब को उसका स्पर्श भी...'

देश सेवा के लिए जानकीदेवी को पद्मविभूषण से अलंकृत करके भारत सरकार ने जैसे उसी स्पर्श को अपने लिए भी संजो लिया था.

सादगी, त्याग, कर्मठता, परसेवा और सबकी सहायता, अपने लिए नहीं, दूसरों के लिए जीना-यही जानकीदेवी के जीवन के मूलमंत्र थे. जीवन भर वे इन्हें निभाती रहीं, लेकिन अपने पति से अलग अपने तईं बहुत कुछ करते हुए भी उन्होंने अपने आप को, अपने काम को पति जमनालालजी का ही माना. इसीलिए उन्होंने अपनी 'अंतिम अभिलाषा' में कहा : 'मेरी मृत्युतिथि अलग से न मनायी जाय. 11 फरवरी को ही, जिस दिन पूज्य जमनालालजी की मृत्यु हुई. मेरी तिथि (उसी में) संयुक्त रूप से मनाई जाय. जिस तरह मैं जीवन भर उनमें समाई रही, उसी तरह मेरे अंतिम अवशेष और मेरा सारा स्मृति-स्मारक भी उन्हीं में समाया रहे... मेरी भस्मी लोकप्रथा के अनुसार संगम (प्रयाग) या हरिद्वार आदि तीर्थों में ले जाने की आवश्यकता नहीं है. मेरे लिए गोपुरी (वर्धा) ही सबसे बड़ा तीर्थ है. जहां गोमाता की सेवा करते हुए स्वयं जमनालालजी चिरनिद्रा में सो रहे हैं, वही मेरे लिए पुण्यधाम है.'

•

जानकी देवी, जिनके साथ सन १९०२ में जमनालाल का विवाह हुआ.

पति जमनालाल बजाज के साथ.

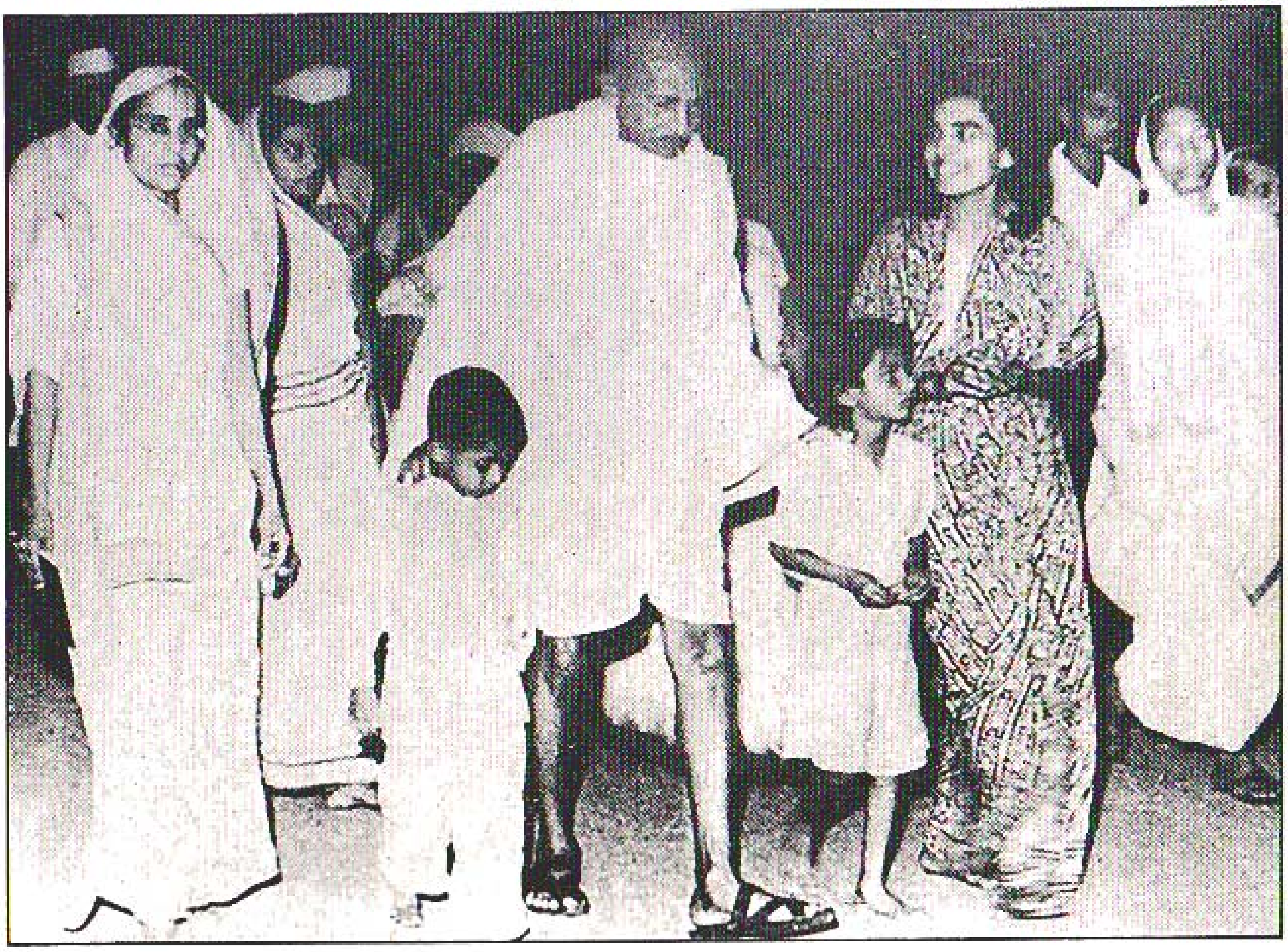

महात्मा गांधी के साथ जानकीदेवी तथा डॉ. सुशीला नैयर.

पति जमनालाल व बच्चों के साथ. कमला खड़ी हैं तथा बैठे हैं - कमलनयन, मदालसा व उमा.

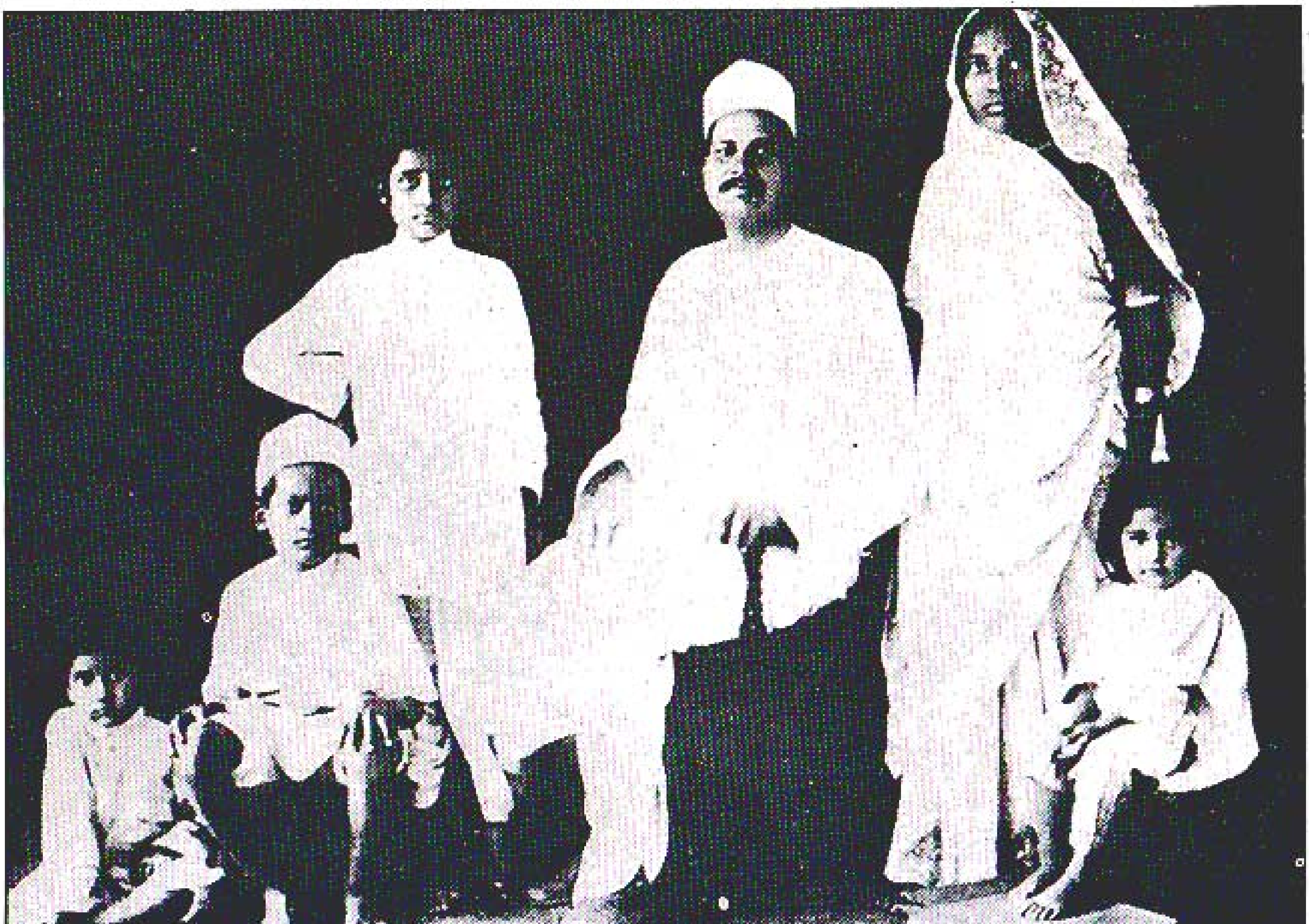

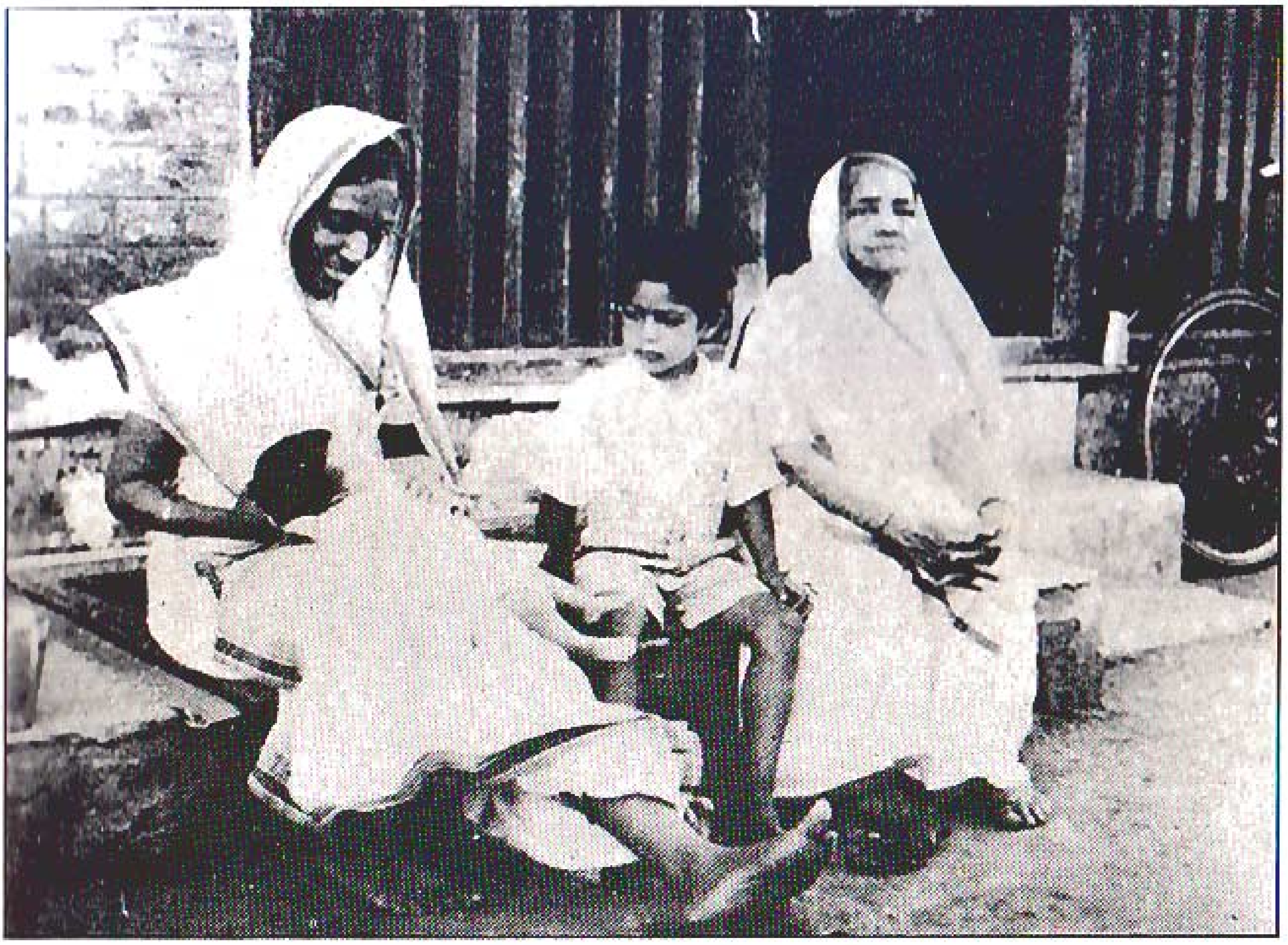

सेवाग्राम आश्रम के बाहर कस्तूरबा के साथ आश्रमवासिनी जानकीदेवी.

वर्धा में बापू के अस्थिकलश के सामने सूत कातती हुई जानकीदेवी.

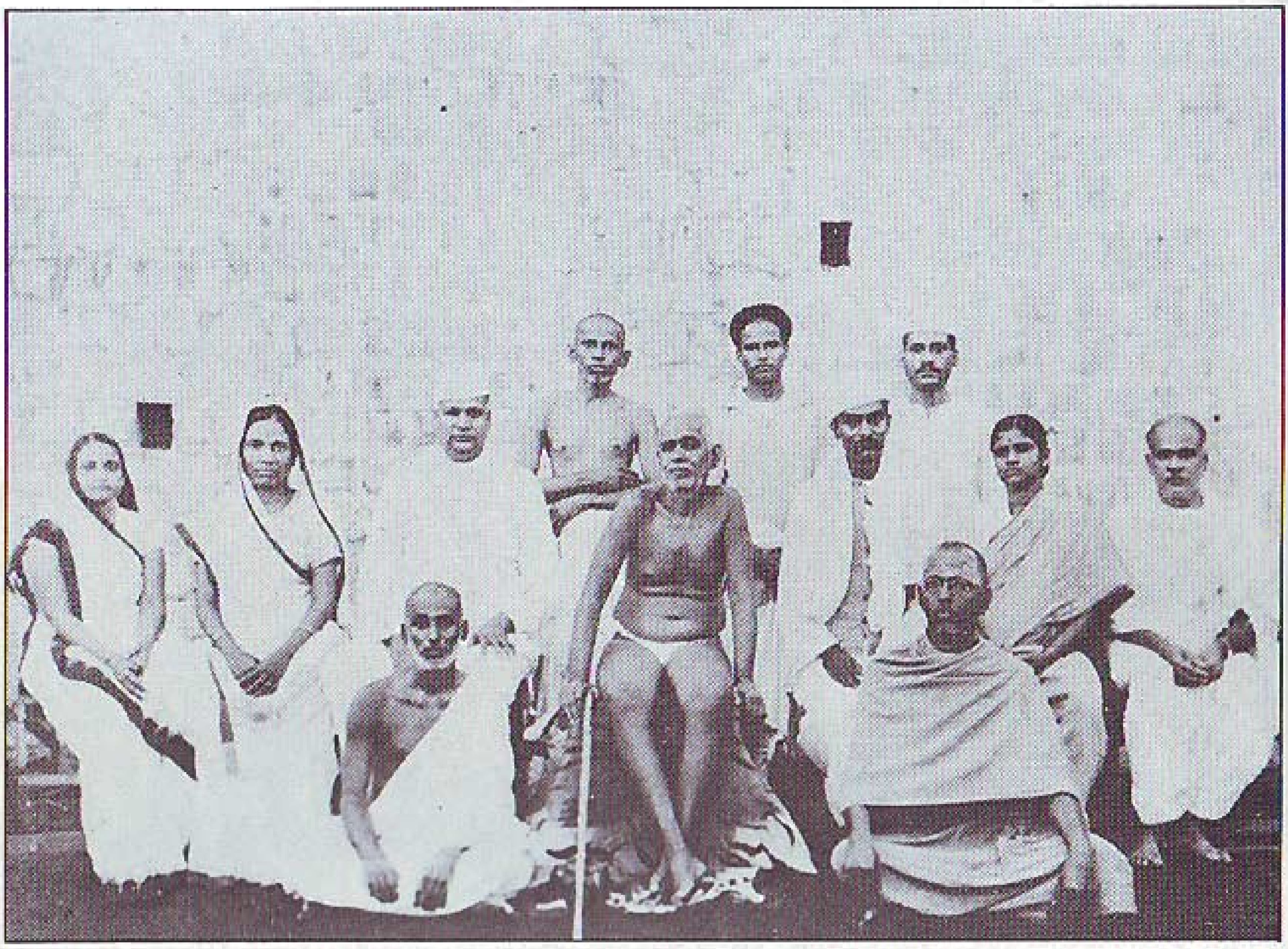

महर्षि रमण के साथ उनके आश्रम में. साथ में राजेंद्रप्रसाद और जमनालालजी भी हैं.

जमनालालजी की आध्यत्मिक मां आनंदमयी के साथ.

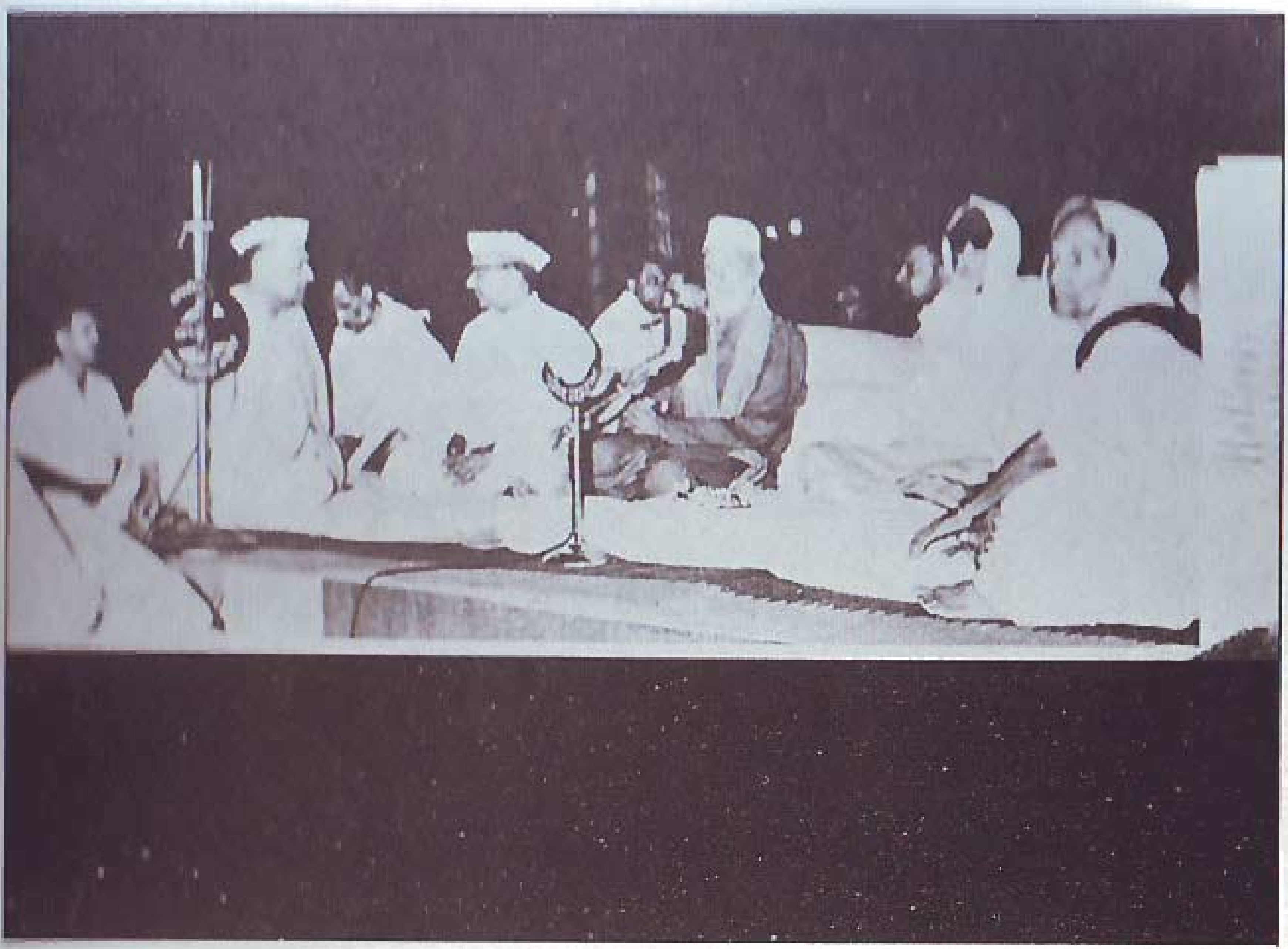

गोपुरी, वर्धा में जमनालाल की स्मृति-सभा में जानकीदेवी, विनोबा, अब्दुल गफ़्फ़ार ख़ान, श्रीमन्नारायण, बालकोबा तथा कमलनयन.

जानकीदेवी ने विनोबा के भूदान से प्रेरणा ले कर कूपदान-यज्ञ शुरू किया. विनोबा के साथ उन्होंने कई पद-यात्राएं कीं.

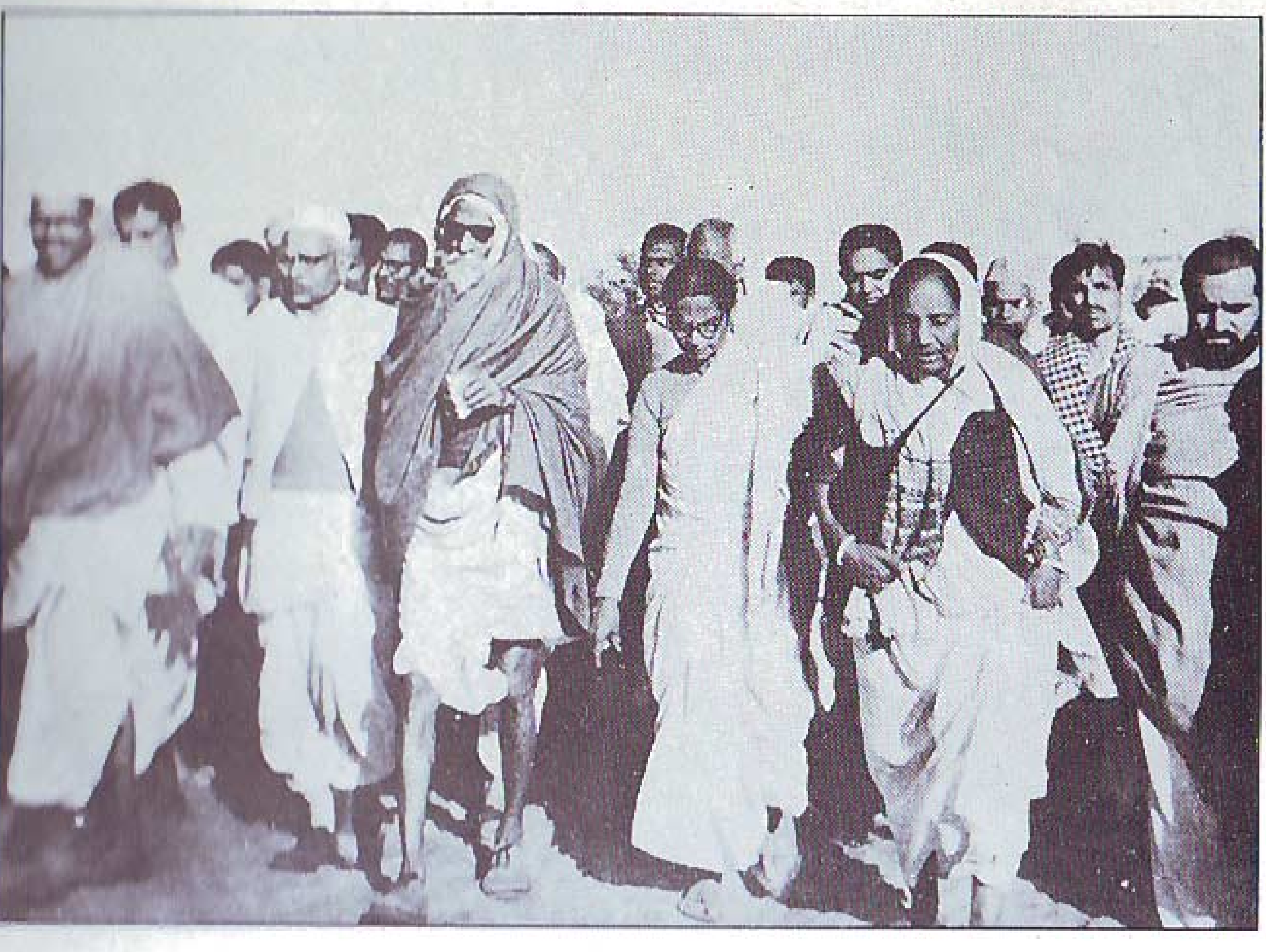

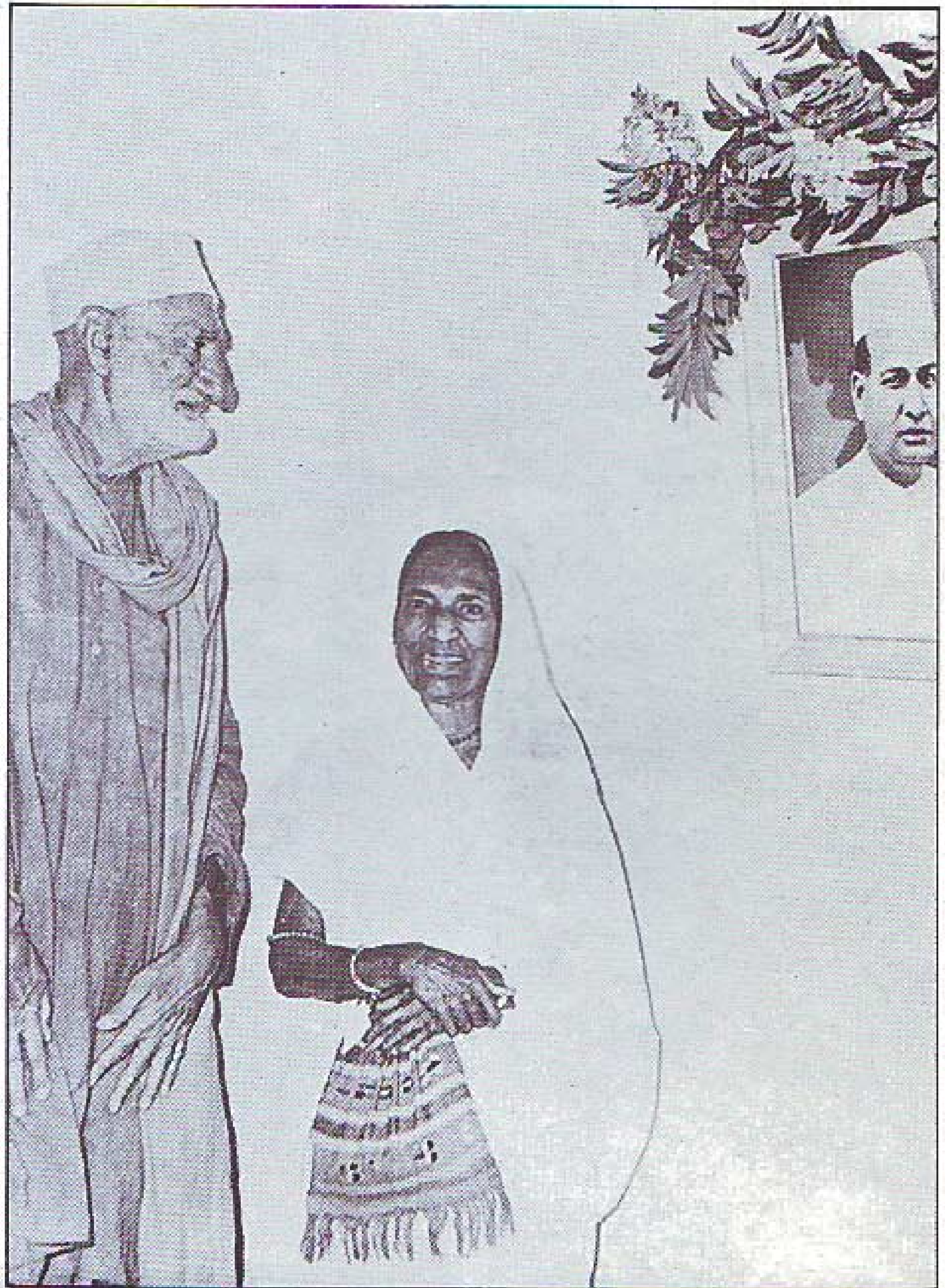

बादशाह खान
के साथ

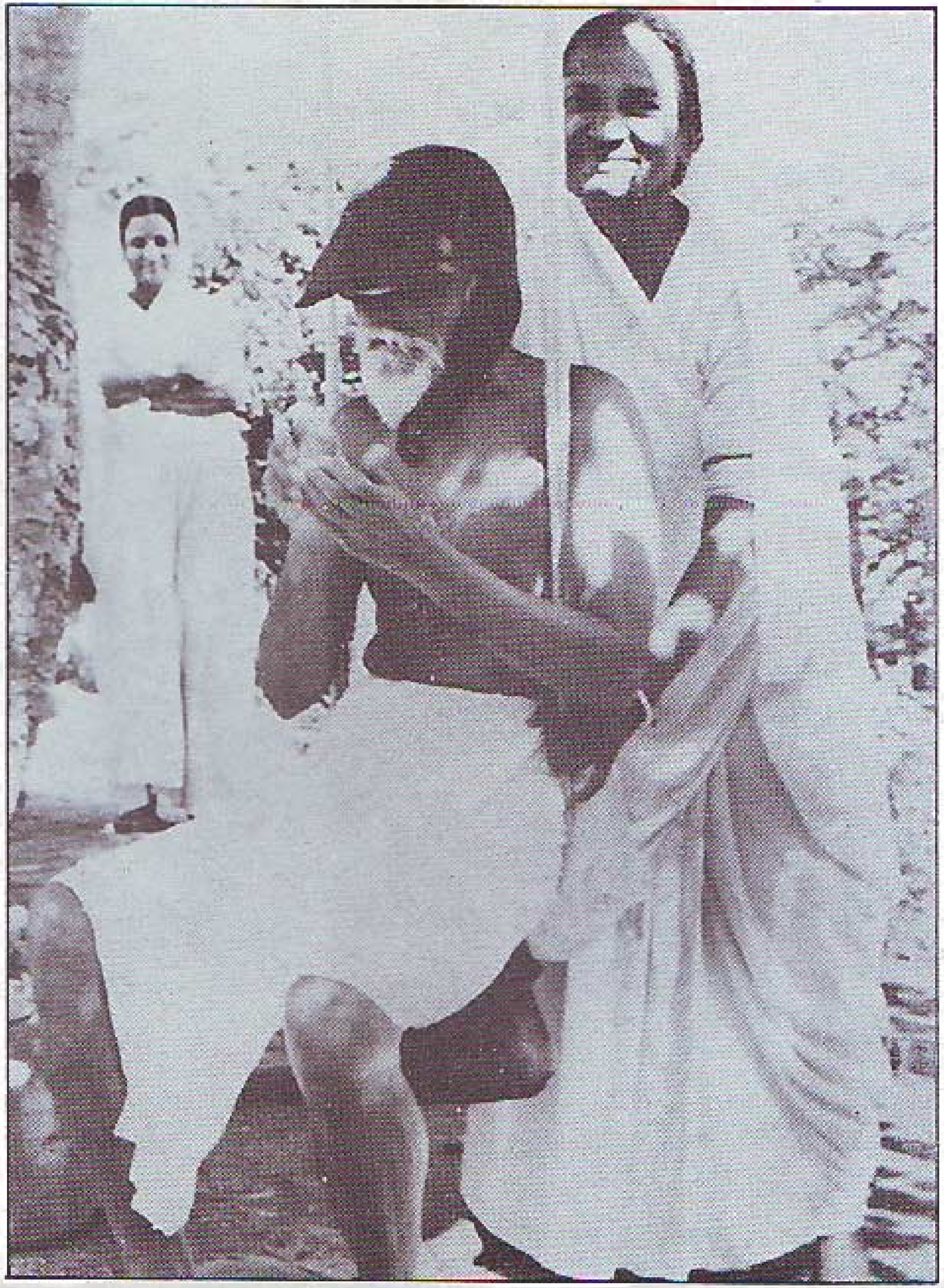

विनोबा के साथ

डॉ. राजेंद्रप्रसाद जानकीदेवी बजाज को पद्मविभूषण सम्मान से अलंकृत करते हुए.

माताजी जानकीदेवी के सम्मान में प्रकाशित अभिनंदन ग्रंथ भेंट करती हुई प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी.

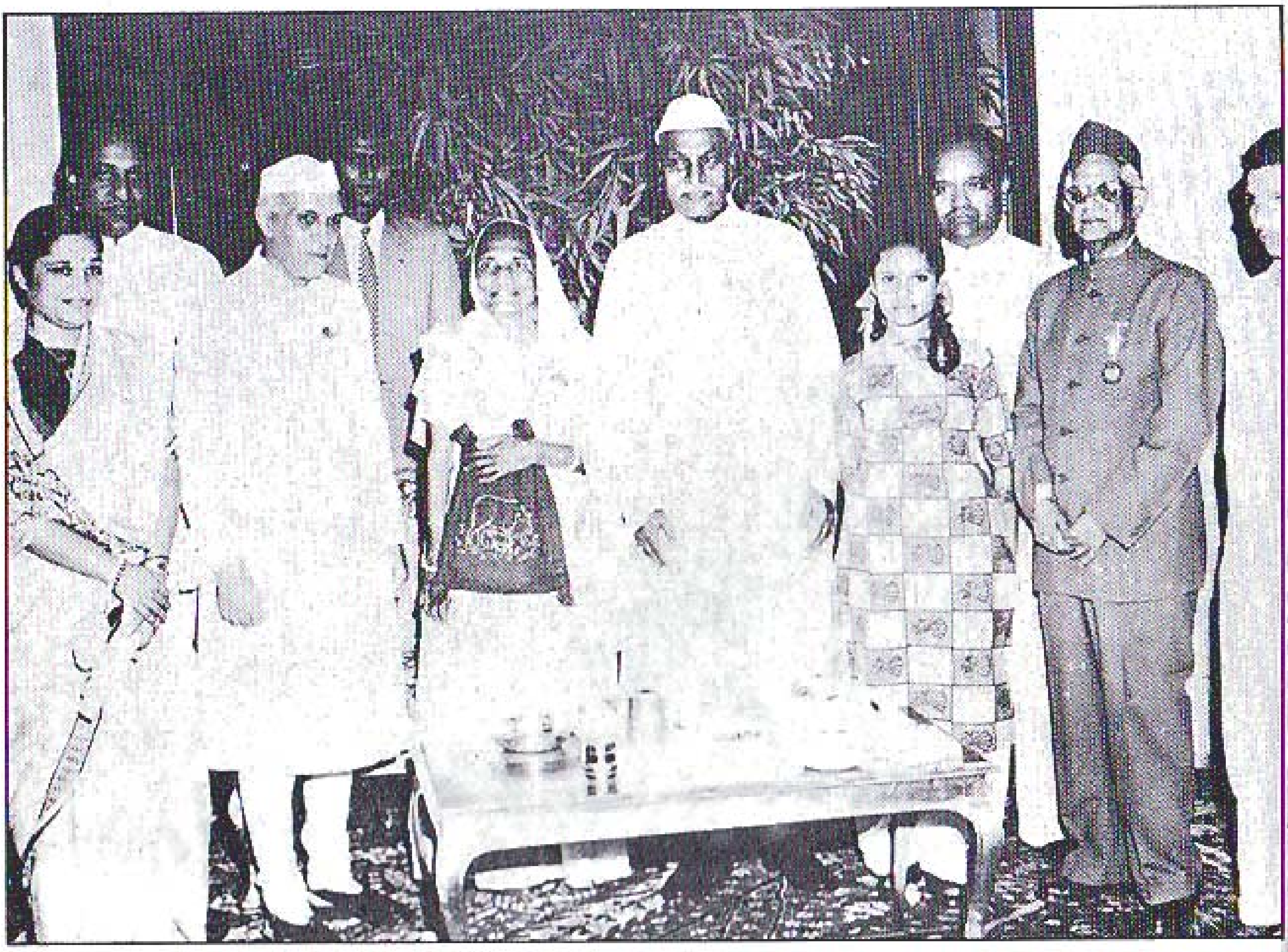

भारत सरकार ने जानकीदेवी को 'पद्म विभूषण' सम्मान से अलंकृत किया. सम्मान ग्रहण के बाद वह राष्ट्रपति राजेंद्रप्रसाद व प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू के साथ खड़ी हैं.

बजाज-परिवार के साथ जवाहरलाल नेहरू व रविशंकर शुक्ल, बजाज वाड़ी में.

Light. And Shadow... they are inseperables. Yet Light has no shadow. With its inherent power it moulds darkness, cajoles it into shape and casts it into the form of what it lights upon. The nearer the light source, the greater the shadow and brighter the form.

Some people are born to give Light. And some to live in its shade. To lose themselves, their identity and to eventually become one with its brilliance.

Jamnalal was the shadow. Mahatma Gandhi his Light.

As his 'fifth' son, Jamnalal dutifully allowed himself to be overshadowed by the Mahatma who was also the light source for multitudes of people.

Without any desire to share this limelight, he was content to remain in the wings and provide silent support to the national struggle for independence.

Under such circumstances what could be the fate of his wife Jankidevi but to be the shadow's shadow !

Jankidevi too followed Jamnalal dutifully. There would have been great satisfaction for her in doing so, even some fun and enjoyment, if she herself was merely a colourless personality who could easily dissolve into a non-entity. That, however, was not so. Jankidevi herself possessed unbound energy and the fire of ambition burned bright within her. It was also constantly being fueled by her own husband. And yet, she could not persist herself to change her chosen path as this would have severely endangered her association with Jamnalal. Nor could she strictly adhere to it. The dilmma was of a very peculiar nature.

Jankidevi resolved it by chosing the middle path. The shadow would remain a shadow within the sphere of duty. At the same time, it would retain its own identity without jeopardising the relationship.

Outwardly Jankidevi Bajaj was a simple, normal Indian woman. And, although she followed Jamnalalji's destined path of 'karma', her own life's journey had a purpose of its own. The course she adopted towards this purpose was a revolutionary one which did not deviate from the accepted norms of society. She always managed to add a new touch to old precepts. So much so that

anything and anybody she came into contact with was touched by her extraordinary spirit. Thus, while remaining in the shadow of Jamnalal she carved for herself a separate image, that of a revolutionary Indian woman.

Born on January 7, 1893 in a prosperous business family of Jaora, Jankidevi imbibed traditional values like love for gold, caste distinction, being helpful, kind, and strictly religious. Besides, she also acquird all the necessary accomplishments for girls of her time. She was good at cooking, sewing, knitting and embroidery.

With such an upbringing, her life took a sudden turn when at the age of nine she was married to the twelve year old Jamnalal who years later, had dedicated his life to Gandhiji's ideals. Suddenly her simple days of fun and frolic were over.

The new life she had embarked upon was certainly an extremely traumatic one. And it was. But it was not long before she came out of it a winner.

It was sheer inner strength that saw her battle her way out. So much so that a day came when she no longer merely accepted and followed Jamnalal's Gandhian principles but had even went beyond them. Certainly not an easy task when one considers Jamnalalji's personality who in a sense a worldly business man, was also free of worldly ties. This is exemplified by his renouncement of home, family, wealth and its consequent material luxuries and comfort, at the tender age of 17, (it is a different matter that later he was persuaded to change his mind). A man who could think of becoming a sadhu, of giving away his all to the cause of national freedom, of living only for others and by the strict principles of Gandhiji, was not an easy man to live with. But Jankidevi not only took care of Jamnalal and his household but also participated in his social and constructive activities. It was like an ordeal through fire. And with each new day she seemed to emerge more luminous than before.

Jamnalalji was a strong supporter of equality of the sexes. In fact, he placed woman much above man. This itself was so contradictory to the ideas of male superiority instilled in her that she continued to believe that the husband was next to God. She would never eat her food before Jamnalal did. More surprising was her ritual of first sipping the water with which she washed her husband's feet. Jamnalal, much to his dismay, found he could not put a stop to this, although he did manage to get her to stop eating from his plate after he had finished his meals.

At 14, yet another moment of trial accrued for Jankidevi. Jamnalal wrote to her asking her to relinquish her gold ornaments. Jamnalal's disapproval of gold was well known. To this was added Gandhiji's appeal too.

Jankidevi has narrated this event in her autobiography in a heart rending manner. She writes, "If he had asked me to do this in person, I might have argued with him. But his letter was a commandment to me. Every single word was like divine order and I obeyed without hesitation. With the letter before me I started removing the jewellery I was wearing, one by one with each word ringing in my ears... Gold is a symbol of 'kali'. It breeds jealousy and fear... fear of losing it or it being stolen. Besides, the ear and nose rings cause bad odour..."

What remained on Jankidevi's person were anklets, a jewellery item worn by even the poorest. But Jankidevi gently unwound this little silver chain as if freeing herself from the bondage of the feudal system.

This was the beginning of a chain of events which saw Jankidevi discard similar symbols of slavery. 'Purdah' was one of them. The purdah in Rajasthan was considered to be a sign of aristocracy and social grace. At Jamnalal's behest, Jankidevi not only gave up the purdah herself but also persuaded other women in the family to do so. She writes, "After I gave up the purdah, it became an obsession with me. I would ask others to give it up too. I thought it was not only an act of courage, but also an instrument which opens the heart and mind to the world around you."

In this context, Gandhiji's letter to Jankidevi is very revealing. Written on Oct. 25, 1933, he complimented her for going to Calcutta

to influence women there to give up the Purdah. He writes, "Purdah is not merely an inhibition, I smell sin in it. Are all men lecherous? From whom women need to protect themselves and to hide behind their Purdahs? Can't a woman preserve her purity otherwise? Purity, which in any case is so very psychological a state of mind".

It is important to mention here that whatever steps Jankidevi took were not merely by way of following her husband's orders. They were very important elements in the process of her turning into a revolutionary. How can one forget that a revolutionary is an idealist and a missionary too!

Jankidevi's idealism and missionary zeal was at its peak during the Swadeshi movement. And Khadi, as Gandhiji said, "is the foundation of self reliance for rural life in India, just as imported cloth was a form of slavery to anything "foreign".

Jamnalalji himself spun and wore Khadi. His 'charkha' followed him wherever he went. Even to the prison. He would keep proper account of how much yarn he spun everyday. Jankidevi too did the same. She also conducted spinning classes for which she had sixty charkhas installed at home. Thus Bajajwadi at Wardha became the hub of the Khadi revolution and Jankidevi became instrumental in making the 'charkha' a household item in Wardha.

This also heralded Jankidevi's stepping out from the four walls of her house and into the world to work for society. Enrolling members for the Congress was one of the first few tasks she undertook. Not many were well disposed towards words like 'Swaraj' and 'Congress'. Jankidevi untiringly went from house to house inviting people to join the Congress. "Fellow women were skeptical of this work which I had taken on. People who once treated me with respect became scared or hesitant to entertain me. They would either shut their doors to my face or avoid meeting me. Under such circumstances I managed to enroll maximum members from the Harijan community." This also made Jankidevi break the shackles of the practice of untouchability. At the same time, the Bajaj family's private Laxminarayan Temple was thrown open for the Harijans. And a Harijan was hired as servant in the house. He was even permitted to serve food to Jamnalalji. Thus another barrier fell away.

Jankidevi's vision was widening and her way of looking at the world was fast changing. Now she began to see many of the traditional beliefs she had long held as social evils.

Jamnalalji being a staunch supporter of education for women as a means to women's emancipation, encouraged Jankidevi to study. She appeared for examinations several times. But to pass or fail ws not of great importance. What was important was the learning itself. Eventually, she had learned enough to begin teaching others. She became actively associated with the Mahilashram and other women's educational institutions.

When the Swadeshi movement gained momentum, Jamnalalji said to Jankidevi, "Gandhiji says that foreign textiles have invaded India like a demon. We have to kick this demon out of the country. Ensure that not a piece of foreign material remains in the house."

"How can we do this ?" asked Jankidevi. "At home, in the shops, even in the temple we have foreign made cloth. How do we do away with it ? Why not instead distribute it among the poor ?" Jamnalalji answered, "This would amount to passing our sin on to others. This would virtually put an end to the Swadeshi movement. Besides, how can you distribute evil, it only deserves to be burnt. So burn all the foreign cloth we have, in a bonfire."

Totally convinced, Jankidevi took every piece of cloth at home from the shop and the temple and set fire to them. This 'holi' continued to burn for seven days at the central chowk at Wardha.

Women emancipation, Harijan welfare, women's education, propogation of Khadi and the fight against social evils were all the causes Jankidevi worked for with zeal. No 'orders' from Jamnalalji were necessary. Jankidevi had come into her own. Like her husband she too toured extensively round the country adding dimensions of her won to Gandhiji's constructive programmes.

Then came the year 1930 when Gandhiji launched his most important movement–The Salt Satyagraha. Jamnalal said to Jankidevi, "I'm ready to sacrifice my all to this cause. What about you ?" Jankidevi's reply astonished Jamnalal. "There should be

atleast one person from our house in Bapu's group. And there certainly must be an offering from our family to this great sacrificial fire."

That one person was her oldest son Kamalnayan Bajaj, only 18 years of age. In fact, Gandhiji was not willing to accept Kamalnayan only because he was so young. Jankidevi, however, was adamant, and Gandhiji finally had to relent.

At the instance of Gandhiji, Jankidevi together with Jamnalal devoted herself to the training of Satyagrahis for the freedom movement, at the Vile Parle Camp in Bombay. This also involved picketing outside liquor shops and pleading with people to give up drinking. As a consequence, she got branded as a 'satyagrahi' herself and was also arrested and imprisoned.

For a girl who had not known much beyond the courtyard of her house, Jankidevi had come a long way into being a 'revolutionary' of a national stature. Her contribution to Gandhiji's economic programme of 'Gram Swaraj' was enormous. Whether it was 'Goseva' to preserve cattle wealth, or the development of the cottage industry in the 'Swadeshi' movement, Jankidevi threw herself into service with the firm conviction that rural development was possible only through the promotion of rural entrepreneurship.

All this Jankidevi accomplished despite her heavy domestic responsibilities. Amidst common household chores, rearing children, marriages, hospitalisations, looking after scores of guests, especially the political leaders who came to Wardha to participate in the Congress Working Committee meetings, she also found time to participate in various constructive programmes of both Gandhiji and Jamnalalji, tend to the cows in the 'Goshala' opened by Jamnalal. But no matter what common task she performed, Jankidevi always managed to give it her very own uncommon touch.

In this seemingly humdrum way of life, like a bolt out of the blue, tragedy struck. On 11th February, 1942. At the age of 50, Jamnalal, her mainstay in life, died. Jankidevi was stunned by

this sudden severence of a three decade long bond. Her first reaction was to give herself up in 'Sati'. Mahatma Gandhi intervened saying, "Real Sati is not burning a body, which, in any case is nothing more than clay. Burn up whatever evil there is in you or all that can perpetuate evil around you. By this you will have only goodness left as your offering to God." Without a moment's delay, Jankidevi's mind was made up. My belongings and my life I surrender to the Lord. Thereafter, she followed Gandhiji's advice both in action and in spirit.

The Goseva Sangh which Jamnalalji had founded some time before his death when he took to Goseva himself, was without a leader. Again Gandhiji asked Jankidevi to fill this gap and she gladly took over the presidentship of this association. Vinoba Bhave and G.D. Birla became its Vice Presidents. New momentum was thus given to the Goseva. Jankidevi instensified its thrust with the intention of giving it a national platform. Her efforts began yielding results when 'Goseva' made inroads into Bihar, U.P., Punjab, Rajasthan, Bengal and Bombay.

Gandhiji's assasination on 30th January, 1948, as much as it shook the whole nation also cast a great gloom over the Bajaj household and more so over Jankidevi. Feeling bereft and orphaned, the Bajaj family experienced the loss as much as Jamnalal's death had caused them. Jankidevi was now left with only one support. That was Vinoba Bhave.

When Vinoba started the 'Bhoodan' (land donation) movement, Jankidevi joined in. After acquiring hundreds of thousands of acres of land, Jankidevi's common sense sparked off a new concept. "What good is mere arid land?" she asked and thus initiated the 'Koopdan' (well donation) programme. With this additive, Vinoba's "Bhoodan Yagna" became complete.

Now there was nothing to do, nothing to ask for. Yet as the years rolled by, this inobtrusive shadow of Jamnalal grew into a live spirit. So alive was it that after her light source was gone; Jankidevi became light herself.

Like all of us, she too had her own peculiarities. She would

never used the word 'no'. Her heart was so tender and her emotions so intense, that she could not even bear a nail being driven into the wall. She felt it as if it went through her heart. Her innate love for animals gave her the courage to stop a moving cart in its tracks and upbraid the rider who was mercilessly using spurs and goads on his beast of burden.

Jankidevi's childlike spontaneity was never lost. This was evident in her talks and speeches. Vinoba narrated, "When we were entering Bengal after our 'Padyatra' in Bihar, there was a big crowd with many young boys in it. To make my way through the crowds, I began running while holding onto the hands of the young boys. The elderly ones lagged behind. I had not realised that a sixty two year old 'girl' had fallen in step with me. Suddenly she fell down and hurt her knees. The knee still pains. She now can't walk, leave alone run. But her mind still keeps racing. I wish and pray she never loses her child-like spontaneity so that we continue to be touched by it."

By awarding the Padma Vibhushan to her, the Government of India has preserved this touch for all of us.

Simplicity, sacrifice, commitment, selfless service were as much Jankidevi's tenets as they were Jamnalal's. And like Jamnalal she turned them into deeds. In fact, she had so fused herself with her husband's personality that as her 'last wish' she wrote : "My death anniversary should be observed on the day Jamnalalji died, that is 11th February. Just as I was merged with him in life, so should my last remains and memorial too be with him on death. Contrary to the normal rituals, my ashes should not be taken to the holy Prayag or Haridwar. For me, 'Gopuri' at Wardha is the holiest of places, a place of pilgrimage. That very 'Gopuri' where Jamnalalji, serving the mother cow, went into eternal sleep. That is my sacred abode.

●

प्रकाशन :
जानकीदेवी बजाज ट्रस्ट
बजाज भवन, जमनालाल बजाज मार्ग,
२२६, नरिमन पॉइंट, मुंबई-४०० ०२१

मुद्रक :
ग्राफिकर्स प्रेस
१६२, ए-टू-झेड् इंडस्ट्रियल इस्टेट
मुंबई-४०० ०१३